ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-3*April- 2018
Innovation The Research Concept

लोकधर्मी नाट्य विधा: स्त्री का समय और सच

रामाश्रय सिंह
वरि0स0 प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

सारांश

लोकधर्मी नाटक विधा के अनुसार भारतीय मध्य वर्ग मोनोलिथिक नहीं है, बहुरूपी है। इसका अर्थ है कि मध्यवर्ग सिर्फ अहंकारी, अवसरवादी, और ह्रासोन्मुख नहीं है। प्रसाद और मुक्तिबोध के गुणों की तरह आज का युग भी आशा कर सकता है। विशेषकर उनसे जो स्वार्थपरता, तृप्तियों या निष्क्रीय चिन्ताओं में डुबे नहीं हैं। लोकधर्मी नाट्यविधा की रचनाओं में मध्यवर्गीय मानस की जीती जागती तस्वीरें हैं। आज के लिए प्रेरणा हैं। उनकी निजता और सार्वभौमता में एक व्यापक अंतक्रीड़ा है। उनकी रचनाओं में धधकते बिम्ब हैं। लोकधर्मी नाट्यविधा के यहाँ संघर्ष की बहुक्षेत्रता और विविधता का विशेष उल्लेख करते हैं। आज तात्कालिक अंतविरोधियों के बीच अपनी सफलता का रास्ता निकालने के लिए मघजमारी मची है। जैसे धार्मिक व्यक्ति धर्मी नहीं । राजनीतिक व्यक्ति राजनीतिक नहीं है। यहीं नहीं साहस दिखाने का अर्थ बदल गया है। फैंशन की दुनियाँ में साहस दिखाने का मतलब कामुकता। राजनीति में घोटाला। दूसरे की हत्या। व्यापार तो छूट्टा बाघ है। वित्तीय बाजार सें हजारों करोड़ का ऋण लेकर देश से भाग जाना। प्रेम की दुनिया में साहस दिखाने का अर्थ है बलात्कार। ये है साहस के रूप। जो सांस ले रहे हैं ये खबरे हैं। मीडिया में साहस का अर्थ है झूठ का ज्वालामुखी। संदेह मुक्ति रूप है। जबकि शिक्षा संदेह को मिटाता है। संदेह करना करना पाप है। संदेही दुष्ट आत्मा वाला होता है। सैकड़ों साल से अंधविश्वास और पाखण्ड जड़ जमाये हुए है। इसके मूल में प्रचार, धर्म, व्यापार और राज्य सत्ता में है। इसलिए किसी भी युग के धर्मगुरू, बाजारपति या राजनेता नहीं चाहते की लोग संदेह करें। ये सिर्फ भक्त पिछलग्गू और सम्मोहित लोग खोजते हैं।

आज का सच है–कर्जा भी अजीब होता है साहब अमीर पर चढ़ जाये तो देश छोड़ देते हैं और गरीब पर चढ़ जाये तो षरीर छोड़ देते हैं। अन्ततः जिसदिन महिलाश्रम का हिसाब होगा मानव इतिहास की सबसे बड़ी चोरी पकडी जायेगी। नादान इन्सान ही जीवन का आनन्द लेता है ज्यादा होषियार तो हमेषा उलझा हुआ रहता है। देश की लाखों अभागी औरतें रोज पशुओं जैसी जीवन जी रही हैं। इन महिलाओं को समुचित शिक्षा–दीक्षा दी जाय तो उनमें से बहुत सारी प्रख्यात अभिनेत्रियाँ निकल सकती हैं? उन्हें सुधि समाज की सराहना और सम्मान मिल सकती है? वह उज्ज्वल प्रभामय जीवन जी पायेंगी। इससे दुनियाँ के पाप भी कम होगें। लोकधर्मी नाट्य विधा के व्यवसाय को यदि वेष्याओं के लिए खोली जाती है, तो उम्मीदों की कुछ किरण अवश्य परिलक्षित होती नजर आ सकती है। ऐसा मेरा मानना है। उदाहरण के लिए अभिनय को ही लीजिए। इसके अध्ययन के लिए विद्यार्थीयों को चेष्टा करनी होगी ? उससे वह अपने व्यक्तित्व को भूल जाएगा और नाना व्यक्तियों में जिएगा, और ऐसे विविध किरादारों को अपनाने से, उसकी बुद्धि और उसकी नैतिकता, दोनों पर सकरात्मक प्रभाव पड़ेगा। दूसरी और मंच पर काम करने वाली स्त्री के साथ। तीसरी ओर वेश्या भी महसूस करेगी कि उसे जनमत के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। परिणामतः मनमाने ढंग से व्यवहार करने की स्थिति में नहीं रहेंगी। स्टेज के काम को पसंद करेंगी, अगर काम में महारत हासिल कर वह ख्यात अर्जित कर लेती है तो हो सकता है, वह वेश्यावृत्ति छोड़ने को सोचने लगे। लोकधर्मी नाट्य विधा निस्संदेह गौरतलब है। वेश्याओं को अभिनय सीख कर और ख्याति पाते हुए कमाने का अवसर प्रदान करने वाला, ये नया विकल्प, उन्हें एक वैकल्पिक रोजगार मुहैया कराएगा जो अन्ततः उन्हें पुराना व्यवसाय छोड़ने के लिए प्रेरित कर सकता है। इस तरह ये महिलाएँ भी ज्यादा नैतिक और सदाचारी हो जायेंगी। व्यवसाय के प्रति रूझान बढ़ाना साथ ही सामाजिक स्तर ऊँचा करने का सुनहला अवसर प्रदान कराना ही मेरे शोध लख का सार है। वह ताकत लोकधर्मी नाट्य विधा में मौजूद है।

मुख्य शब्द : सुधिसमाज, प्रख्यात, निःसंदेह, रूझाान, उन्नति, उत्सव, विनोदनी, पुर्नवास, थियेटर, रेकग्नेशन, निर्वाह, संभ्रान्त, शारीरिक, योर्स फुल्ती, हट्टी हमीर प्रभेय, पुरजोर, अपील, McToo, प्रशिक्षित, ट्रान्सजेण्डर। हिजड़ा भी लक्ष्मी।

प्रस्तावना

स्त्री का सच है? समय। जिस वर्ग, स्थान, या समाज से आती हैं, वहाँ उनके पास अपनी बात कहने की ताकत नहीं होती है। उनके, सामने बहुत सारे लोग रहते हैं। उनमें बहुत सारी इन तरह के दबाव रहते हैं, क्योकि हमारे समाज के लिए महिलाओं के कला कौशल की बजाय उनकी पवित्रता ज्यादा मायने रखती है। यदि थियेटर की उन्नति आवश्यक भी है तो भी सामाजिक धरातल पर महिलाओं की नैतिकता ही ज्यादा मूल्यवान मानी जायेगी।[1] महिलाओं का जीवन स्वाभाविक रूप से दो समय खण्डों में बंटा रहता है–एक विवाह पूर्व और दूसरा विवाहोपरान्त। ऐसा लगता है कि ईश्वर ने उन्हें अपने जीवन का पहला खंडभरपूर नाचने गाने और अभिनय के उत्सव के लिए और बाद वाला खण्ड बच्चे पालने के लिए दिया है इसके बावजूद उन्होने अपने चरित्र की भी रक्षा की है। यही कारण है कि अपने कलात्मक जुड़ावों पर गर्व करने वाली शिक्षित महिलाएँ अपने सोने जैसे चरित्रों को नाट्य पारसमणि पर परखें और भावनाओं की ज्वाला में उसे जलाएँ। समाज को विश्वास दिलाएँ कि ऐसा कोई व्यवसाय नहीं है जहाँ स्त्री कलंकमुक्त और मस्तक ऊँचा करके नहीं रह सकती। उदाहरणार्ध सबसे पहले तो हमें वेश्या अभिनेत्रियों के जीवन को देखना होगा, वेश्यावृत्ति तो वंशानुगत नहीं होता है। यह एक प्रकार का व्यवसाय है। जैसा कि जीवनीकारों ने बताया है–उनमें से कुछ तो वेश्याओं के बेनाम और निषिद्ध क्षेत्रों से आयी थी, लेकिन कुछ परम्परागत मनोरंजन व्यवसायों के पृष्ठभूमियों से आई थी। कुछ विवाहित थी, लेकिन अपनी ससुरालों से समस्याएं झेलने के बाद वे घर छोड़कर थियेटर में आयी थी। इनमें प्रमुख बंगाल की बिनोदिनी गरीबी के कारण प्रफुल्ल बाला सोलह की उम्र में वह अपनी ससुराल से भाग आयी थी, तीनकोरी की मां को गर्व है कि उसकी बेटी थियेटर में काम करती है। इन्दुबाला की जिन्दगी के सबसे खुशनुमा दिन वे थे जब उन्हें स्टार थियेटर में काम का प्रस्ताव मिला। इन नेत्रियों के लिए थियेटर में काम करना आमदनी का स्त्रोत था। ये उनके लिए आजीविका भी था और काम भी था। यह बहुत सारे कलाकारों का कार्यस्थल भी है, उनके लिए ये मजदूरी का एक सम्मान जनक विकल्प था। असल में पितृसत्ता को कला और व्यवसाय के दबावों से मोल भाव करने में कोई परहेज नहीं था। मध्य वर्ग का दावा था कि गिरी हुई औरतों को मंच पर काम करने का अवसर प्रदान करके वे ऐसी पतित और दबी, कुचली औरतों के सुधार और पुनर्वास के कार्यभाार को अंजाम दे रहे हैं। लेकिन इन महिलाओं को समाजिक सम्मान कभी नहीं किया।[2] लोक नाट्य विद्या के ही कारण वह बिनोदिनी दासी ही थी। जिसने रंगमंच की दुनियाँ में स्त्रियों की मौजूदगी को बंगाल के दर्शकों के समक्ष सहज बनाया। वक्त भी कम नाटक नहीं करता? क्या अजीब इत्तेफाक है कि बिनोदिनी दासी की मृत्यु के लगभग 150 बरस बाद स्टार थियेटर का नाम बदलकर बिनोदिनी थियेटर कर दिया गया है। विनोदिनी गरीब घर से थी कहती है, थियेटर में अभिनय करने के पूर्व मैंने कोई नाटक नहीं देखा था। मुझ जैसी जंगली चीज को पकड़ा और एक नायिका में बदल दिया। यह एक स्त्री का सच है। सच के साथ समय भी है। इसके मूल में लोकधर्मी नाट्य विद्या है। जो बिनोदनी के जीवन को बदल दिया। इसी क्रम में त्रिपुरारी शर्मा का नाटक हैं, बहू। यह एक ऐसी स्त्री है जो विधवा है। घर में रह रही है। जिसको प्रेमी चाहिए। जिसको रेकग्नेशन भी चाहिए। जो एक लेबल तक बडी भौतिकीवादी है। इसके साथ–साथ अपनी नजर में इज्जत भी चाहती है। वह कोशिश करती है कि जिस जगह, जिस घर में वह अपने को स्थापित करने की कोशिश कर रही है, लेकिन वही उसको वह घर बाँध रहा है। उसको छोडकर जाने का निर्णय लेती है। यह स्त्रीभाव का सच का स्वर है। वह घर छोड़ देती है। वही संपदा नाटक की ''बेला'' है वह प्रेम करती है, और फिर प्रेम करने के बाद दहेरी पर आ जाती है। घर में वह एक बहस का विषय है कि उसको स्वीकारा जाये या नहीं स्वीकारा जाये। स्वीकारने के बाद जब उसको अपने अस्तित्व की बलि देनी पड़ती है, यह कार्य उसके लिए कठिन है। हम आधे–अधूरे जैसे नाटक को देखें तो उसघर की समस्याओं की जड़ में सावित्री है। बहुत ही असाधारण या विशेष महिला नही थीं। उस घर की काम काजी महिला असाधारण हो गयी। 1991–92 के समय में यदि किसी स्त्री से पूछा जाय तो कहेगी उसे अच्छा आदमी चाहिए। जो निर्वाह कर सके। शायद इतनी सी चीज से बहुत कुछ बदल जाये।[3] वह पूरा आदमी चाहती है। दुःख है कि इस जमाने न पूरा आदमी है न ही पूरी औरत नाट्यविधा में ऐसी ताकत है जो पुरूष पुरूष को पूर्ण कर सकता है? जबाव है–संवाद हीनता को छोड़ना पड़ेगा। किसी संस्कृति में दूसरे से संवाद का कितना विस्तार है। उसमें दूसरी जातीयताओं, नस्लों, धर्मों और जातियों एवं भिन्न मत वालों और स्त्रियों के प्रति क्या दृष्टि है। लोकधर्मी नाट्य विद्या का एक अर्थ है दूसरों के दुःख–सुख समझने की तमीज।

अध्ययन का उद्देश्य

मेरे शोध लेख के अध्ययन का उद्देश्य यह है कि लोकधर्मी नाट्यविधा के माध्यम से जो मंच पर औरत किरदार कर रही हैं उनका जीवन बहुत संवदेन शील होता है। उस संवेदना में लोकधर्मी नाट्यविधा थी यों कहें कला छुपी होती है, वहीं कला इस कड़ी में नाटक से जुड़ती हैं जैसा कि ''अकेली औरत'' इस नाटक को फ्रे और उनकी अभिनेत्री पत्नी प्रफैका रैमे ने मिलकर लिखा है। इसमें औरत की दास्तान है, जो हमारे आस–पास कहीं भी मिल जायेगी। हमारे संभ्रात्र समाज में भी। एक औरत को कमरे में बंद करके रखा जाता है, उसके बच्चे को उससे छीन लिया जाता है। उसे षारीरिक यातना भी दी जाती है, उसके साथ जबरदस्ती शारीरिक सम्बन्ध बनाया जाता है, यही नहीं एक दृश्य में पुरूष के लिंग को दर्शाना होती है तो उसे कोहनी तक हाथ उठाकर दर्शाया

गया। सम्भोग के बारे में पैर फैलाकर दिखाया गया। मुझे लिखने में बहुत परेशानी हो रही है, क्योकि हम अपने आप जीवन में यौन अंगो और सेक्स को बिल्कुल छिपाकर रखते हैं। उसपर कोई चर्चा नहीं करना चाहता हैं मेरे लिए केन्द्र में सिर्फ ''ओ अकेली औरत थी'', उसका संघर्ष उसका अकेलापन, उसकी यातना और उसका विद्रोह। कहने का आशय कि मेरे अनुभव संसार को विस्तार मिला नया आयाम मिला, मुझे हमेशा ऐसा आभास हुआ की मेरी आवाज उन हजारों महिलाओं की आवाज है जो आज भी संघर्ष कर रही हैं। हाशिए से आगे आने की कोशिश कर रही है।[4]

कहना न होगा कि आजादी के पहले और आजादी के बाद भी हिन्दी नाटकों में स्त्री को केन्द्र में रखकर बहुत कम नाटक लिखे गये हैं। फिर भी कुछ नाटकों में स्त्रियाँ मजबूती के साथ उभर का सामने आती हैं। जैसे–भारतेन्दु का नाटक नीलदेवी, जयशंकर प्रसाद का नाटक ध्रुवस्वा मिनी, स्कन्द गुप्त मोहन राकेश का नाटक अषाढ़ का एक दिन, आधे–अधूरे, लहरों का राजवंश या भिखारी ठाकुर के नाटकों में स्त्रिया केन्द्र में हैं। इसमें देखें हिन्दी नाटकों में स्त्रीवाद के स्वर का निनाद'' ध्रुवस्वामिनी नाटक में स्पष्ट सुनाई व दिखाई देता है, इसे स्त्रीवाद का प्रमेय'' नाटक भी कहा जा सकता है। भारत में स्त्रीवाद एक रचनात्मक आन्दोलन के रूप में उभरा है। हमारे मिथकों में, हमारे समाजिक आन्दोलनों के परिप्रेक्ष्य में स्त्रीवाद को खोजा जाता रहा। स्त्रीवाद विचारों से जोड़ा जाता है। उसकी समीक्षा की जाती रही। भगवान गौतम बुद्ध, महात्मा कबीर, ज्योतिराव फूले, सावित्रीबाई, ताराबाई शिंदे के विचारों में, कार्यो में स्त्रीवाद देखा जाने लगा है। इसके अलावा इला, द्रौपदी, सीता, अहित्या के चरित्रों में स्त्रीवाद परिप्रेक्ष्य, भी खोजा जाने लगा। लोककथाओं में व्याप्त स्त्रीवाद का स्वर भी नाटकों में महसूस किय जाने लगा।[5] जो स्त्री का सच है। समय है। समय से बड़ा कुछ भी नहीं है।

हिन्दी नाटकों में असल में अपना विद्रोही स्वर प्रस्तुत किया है उन नाटकों में बिना दीवारों के घर (मन्नू भण्डारी), एक और अजनवी (मृदुला गर्ग) इला (प्रभाकर श्रोत्रीय) सन् सन्तावन का किस्सा–अजिजुन्सिा (त्रिपुरारी शर्मा) सुनो शेफाली (कुसुम कुमार) माधवी (भीष्मसाहनी) कर्प्यू (डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल) यौर्स फेथ फुली (मुद्रा राक्षस) जैसे मुख्य धारा के कुछ नाटकों का विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक है। इब्सेन के ''डॉल्स हाउस'' नाटक ने योरोप में स्वीकार की सोच का प्रधम मंचीय दर्शन प्रस्तुत करता है। डाल्स हाउस की नोरा का विद्रोह दुनिया के स्त्रीवाद की घोषणा मानी जाती है।[6] नारी को केन्द्र में रखकर नाटक लिखने की परम्परा भारतेन्दु के नील देवी तथा 'सती' प्रताप, में समर्थिता त्यागी और पति परायणता की मूरत इस नाटक में स्थापित करने का प्रयत्न है। बालकृष्ण भट्ट का नलदमयंती, राधाकृष्णदास का दुखिनी बाला यह नाटक एक और एक विधवा के दुःख को हाषिये पर लाता है। पं. प्रताप नारायण मिश्र अपने कवि कौतुक तथा ''हट्टी हम्मीर'' इस नाटक में दुश्चारित्र और पत्रिता नारी की कहानी बताते हैं। कहने का अर्थ कि लोकधर्मी नाटय विधा के माध्यम से स्त्री के सुख दुःख को सुना जा सकता है उसका समाधान भी नाटक है। 25 मार्च को हिदुस्तान 2018 में पृ0 10 पर विजय तेन्दुलकर की रचना घासी राम'' कोतवाल में स्त्री के सच को उजागर किया गया है। ललिता की मृत्यु के बाद नाना 7वीं बार विवाह करता है। 7वीं बार विवाह का क्या औचित्य है। यही स्त्री का सच है।

प्रसाद कालीन नाटकों मे मात्र विधवा विवाह, अन्तर जातीय विवाह, नारी की स्वतन्त्रता, स्त्री पुरूष समानता नारी के अधिकारों की बात दिखाई देती है। भारतीय स्त्रीवाद के संदर्भ में ध्रुवस्वामिनी एक महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जाना चाहिए। प्रसादोत्तर काल में उदयशंकर भट्ट (विद्रोहिनी अंबा, कमला) सेठगोविन्ददास (दलित कुसुम) आदि नाटककारों ने प्रतिबद्धता के साथ स्त्रीवाद चेतनाओं को अपने में स्थान दिया। नारी केवल उपभोग की वस्तु नही, स्त्रीपुरूष समता, स्वेच्छविवाह का अधिकार, स्त्रीकत्व, और दलित्व–इस दोहरे शोषण का निषेध आदि स्त्रीवाद के तत्व इन नाटकों में दिखाई देते हैं।

स्वातंत्रोत्तर काल में स्त्रीवाद चेतना, स्त्री देह की राजनीति और स्त्री देह से जुडें स्त्रीवाद विद्रोह के चेतना के स्वार इन नाटकों में दिखाई देता है शान्ति मेहरोत्रा (ठहराहुआ पानी) विमला रैना के (आहे और मुस्कानि) अजनवी (मृदुला गर्ग) सुनो शेफाली (डॉ कुसुम कुमार) त्रिपुरारी शर्मा का (सनसत्तवन का किस्सा–अज्जिजुनिस्सा डॉ0 सुशीला टाक भौरे का नंगा सत्य) आदि के नाटकों में दिखाई देता है।

निष्कर्ष

नाटक के माध्यम से स्त्री को सभी मोर्चो पर समानता, न्याय, समानता– स्वतंत्रता और अधिकार देने की पुरजोर अपील है। स्त्री वस्तु नहीं बल्कि पुरूष की तरह व्यक्ति है। उसे भी सामाजिका, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक तथा स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। किसी भी प्रकार की हिंसा से नारी को पीड़ित नहीं होना चाहिए। धर्म, ईश्वर सामजिक रूढ़ियां, लिंगभेद के आधार पर उसे सम्मान जनक स्थान मिलना चाहिए। संविधान के अनुसार–निर्णय स्वेच्छाधिकार समान अवसर, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नारी देह का व्यापार नारी देह की राजनीति को स्त्रीवाद निषिद्ध मानता है। स्त्री का सच पितृसत्तात्मक सत्ताका विरोध करता है। स्त्री सच का क्रान्तिकारी मोड़ ले चुका है। किसी भी तरह के मानसिक और शारीरिक शोषण के विरूद्ध एक होकर लड़ने की मसाल यहाँ की स्त्रियों ने जला ली है। स्वतंत्र विचारों वाली शिक्षित अपने अधिकारों के प्रति जागरूक, आत्मनिर्भर नारी का संघर्ष प्रकृति के उस मूलभूत सिद्धान्त इच्छा और न के प्रति, जिस पर उसका पूर्ण और मौलिक अधिकार है, जो पुरूष अपनी सत्ता के मद में उससे छीन लेता है। पर ऐसा नहीं सामाजिक सक्रियता वादी तराना बुर्के नेटवर्क के माध्यम से My Space पर 2006 में Metoo शब्द लेकर आई। तराना बुर्के ने अश्वेत दमित और वंचित उन महिलाओं को अपना दुःख दर्द बाटने के लिए आवाह्न किया। डाक्युमेंटरी बना रहीं हैं। इससे स्त्रियों में समझ आ गई है कि अगर उन्हें बलात्कार यौन शोषण और उत्पीड़न को

रोकना है तो उन्हें एकजुट होना पडेगा। और पितृसत्ता के विरूद्ध एक होकर लड़ना पडेगा। तभी एक दूसरे का दर्द बांट सकती हैं। अभी तक भारतीयनारी उस मंजिल को नहीं पा सकी हैं, जिस की वह अधिकारी हैं। उसके लिए देश की स्त्रियों को भी एक होने की जरूरत है, तो क्यों न घरों से ही इसकी शुरूवात की जाय। आज की स्त्री ताजा सृजन की जमीन पर खड़ी हैं। सततजारी रहे, यह कामना है। दुःखद बात भी है कि परिवार में बहू के ऊपर होने वाले अत्याचारों में सासू रूप में माँ तथा सासू के ऊपर होने वाले अत्याचारों में बहू के रूप में तथा पुरूषों के पथभ्रष्ट होने यानी परनारी गमन में अन्य किसी नारी के रूप में कोई न कोई नारी अवश्य ही सहायक रही है। हर जलने वाली बहू को जलाने में माचिस की तीली या घासलेट का क्रेन लेकर सासू या ननद के रूप में कोई महिला ने भी हाथ बटाया है। फिर महिला समाज पुरूषों को ही दोष क्यों दे रही हैं? मेरी तरफ से यों कहें लोकधर्मी नाटक विधा के माध्यम से समाधान भी है कि आपके ऊपर होने वाले अत्याचार काफी कम हो जायेंगे । पहले आप सब नारियॉं तो संगठित हो जाओं। इस बात पर महिलाएँ ध्याान देंगी तो अवश्य ही एक दूसरे की ओर देखती हुई अपनी गरदन झुका लेंगी। इससे भी बड़ा सच है कि महिला प्यार से अधिक अधिकार चाहती हैं, उनकों अपने प्रेमी, पति, बच्चा, माँ, बाप की चिन्ता नहीं है, चिन्ता है उनके (फेश) चेहरे की। एक तरफ देश में दिखावे के लिए बेटी पढ़ाओं, बेटी बचाओं व उनके प्रेम की राजनीति हो रही है तो वहीं दूसरी तरफ आज भी लाखों बेटियां जन्म लेने के बाद भी अपने घर समाज में भेदभाव का शिकार हो रही हैं। आज भी हमारा समाज स्त्री को बच्चा पैदा करने की मशीन ही समझता है। दरअसल सभी बातें सामाजिक जीवन के यथार्थ का जबर्दस्त समन्वय है। कुल मिलाकर नाटक विधा ने समाज में व्याप्त पुलिस, नेता, ठेकेदारी की तानाशाही, स्त्री, दलित, शिक्षा, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, स्वास्थ्य, किसान की व्यथा को नाटक के माध्यम से समाधान दिया है। समाधान के साथ–साथ सच को प्रस्तुत किया है। वे आज भूमण्डलीकरण के प्रभाव को जीवन और समाज पर पड़ने वाले परिणाम को शिद्दत के साथ उजागिर किया है। तकनीकी समाज में फैलती एक–प्रवृत्ति की जहॉं मोबाइल पर मीठीं बातों का खुलेआम व्यापार चल रहा है। चुड़ैलों के कार्य का नेटवर्क चलता है। इनके पैसों की जरूरत पूरी करने के लिए उन्हे शर्तों में बॉंधकर प्रशिक्षित किया जाता है। उसी के हिसाब से पेमेन्ट किया जाता है। कस्बे और गॉव के लड़के–लड़कियों के लिए यह समय ज्यादा आकर्षक लगता है मांनसिक व्याभिचार कहा जाय या अतिआधुनिक जीवन में मानसिक खेल का सच। लोकधर्मी नाटक विधा जो बदले हुए समय, समाज, मनोविज्ञान, इच्छाओं, आकांक्षाओं, जरूरतों के बीच के मानवीय सरोकारों को बारीकी से देखती और परखती है और साथ ही संदर्भो में व्याख्यापित भी करती है। पारम्परिक समाज में स्त्री को मित्रवत नहीं देखा जाता है और लिव इन रिलेशनशिप में स्त्रियों की स्वतंत्रता को भी तरजीह दी जाती है । शादी एक कैदखाने की तरह है। जिसमें एक ताउम्र एक दूसरे को झेलते हुए, और बिखरे सपनों का सहेजने का असफल प्रयास करते रहते हैं जब कि लिव इन रिलेशनशीप उमस भरी नही बल्कि खिली और खुली होती है मेरा इन सब बातों में कोई विश्वास नहीं है, लेंकिन नाट्य विधा के माध्यम से हल निकाला जा सकता है, क्यों कि हमारी नयी पीढ़ी तो बूरी तरह से बाजार के जाल में फॅस चुकी है, और पुरानी पीढ़ी ठगा सा महसूस कर रही है, और नहीं तो एक अपराध बोध भी। वाकई में नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का गृह कलह जीवन का सबसे बड़ा खतरनांक और जहरीला प्रदूषण है। इस कथन को और बल मिलता है। हाल ही में लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी ने स्वेच्छा से लक्ष्मी होना तय किया और न सिर्फ ट्रान्सजेन्डर का जीवन चुना, बल्कि वह आज दुनिया की एक मशहूर हस्ती है। दुनिया भर में जेण्डर–स्टीडीज की कक्षाएं लेने के लिए आमन्त्रित होती हैं, हिजड़ा पर किताब भी लिख डाली, लिखा शीर्षक है– हिजड़ा मी लक्ष्मी[7]।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *स्त्रीकाल–जनवरी कार्य 2018 पृ0 11*
2. *सम्पादक समीप चंदा पृ0 17*
3. *रंगमंच की सक्रियता महिलाओं के लिए आन्दोलन से कम नहीं त्रिपुरारी षर्मा पृ0 37*
4. *आलेख मंच पर स्त्री–मोना झा पृ0 40*
5. *हिंदी के स्त्रीवादी नाटकों में विद्रोही स्वर–डॉ सतीष पावड़े पृ0 7778*
6. *वही पृ0 79*
7. *कथादेश–फरवरी 2018 अनुगूंज सम्वादवीय पृ0 से नवनीत कुमार झा दरभंगा पृ0 5*